भारतीय लोकतन्त्र के बदलते सरोकार

विशाखा,

वाई05–108 गंगा यमुना हिन्डन अपार्टमेंटस सिद्धार्थ विहार, गाजियाबाद,उ.प्र.

शोध सारांश

प्रत्येक सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन मानव–स्वभाव एवं मानव संगठन के कुछ तत्वों को आधार मानकर चलता है। लोकतंत्र भी जिन आधारभूत तत्वों पर स्थित होता है, वे हैं–विवेकशीलता, सदाचार, प्रगतिशीलता, स्वतंत्रता और समता। भारतीय इतिहास के पृष्ठों को पलटने के बाद यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि लोकतन्त्रीय प्रणाली तथा प्रजातान्त्रिक जीवन–पद्धति भारत के लिए कोई नवीन व्यवस्था नहीं। यह धारणा भी मिथ्या है कि संसार को लोकतन्त्रीय पद्धति पश्चिम की देन हैं । वेद, महाभारत, बौद्ध ग्रन्थ, अष्टाध्यायी, ग्रीक लेखकों की कृतियों आदि के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत के अनेक राज्य लोकतान्त्रिक थे। उन राज्यों में शासन–सत्ता का प्रयोग 'जनता द्वारा जनता के लिए' होता था। अनेक प्रमाणों व उद्धरणों के द्वारा इतिहासकारों व शोधकर्ताओं ने सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन भारत में लोकतन्त्रात्मक राज्यों के संविधान तथा उनकी अन्य विशेषताओं का भी पता चलता है।

आज भारतीय राजनीतिक व्यवस्था अपने संक्रमणकाल से गुजर रही है। यह संक्रमणकाल हमें अपने सत्तर वर्षों के लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास करने में हुई कमियों को प्रदर्शित करने लगा है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में सुधार, जनता की राजनीतिक अभिरूचि में वांछित सुधार के बिना भारतीय राजनीति में सुधार नहीं लाया जा सकता है। क्योंकि जनता के चुने हुए लोग ही राजनीतिक व्यवस्था का संचालन करते हैं तथा प्रशासन एवं राजनीतिक संरचना का सुधार भी यही लोग करते हैं। अर्थात् जहाँ लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था लोकतन्त्र का निर्माण करती है, वहीं लोकतंत्र वास्तविक लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण भी करती है।

Keywords: *लोकतंत्र,राजनीतिक व्यवस्था, संघात्मक, संसदीय व्यवस्था, बदलते सरोकार*

वर्तमान में लोकतंत्र की कोई परिभाषा निश्चित नहीं हो पाई है फिर भी 'जनता का जनता के लिए जनता द्वारा शासन' पदबन्ध से लोकतंत्र की भावना प्रस्फुटित होती है। यदि लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए जनता को अपरिहार्य तत्व मान लिया जाय तो फिर जनता का बदलता स्वरुप भी दृष्टब्य है । लोकतंत्र का सर्वाधिक प्राचीन स्वरुप यूनानी नगर राज्यों में उदित हुआ जहाँ जनता का तात्पर्य केवल पुरुषों से था । वह भी उन पुरुषों से जो नागरिक थे या अरस्तू के शब्दों में जिनके पास अवकाश था । यही लोग मतदान से लेकर शासन प्रशासन की सभी प्रक्रियाओं में भी सक्रिय भागीदारी करते थे । दासों और स्त्रियों को नागरिक अधिकार प्राप्त ही नहीं थे । ज्यादा विस्तार न देते हुए यदि यह कहा जाए कि यूरोप में हुए पुनर्जागरण ने जब राजनीतिक और सामाजिक चिन्तन का आधार व्यक्ति को बनाया तथा प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर व्यक्ति पर व्यक्ति के शासन के पुरजोर विरोध की आवाज बुलंद होने लगी तब लोकतांत्रिक

भावना का प्रसार शुरु हुआ । परन्तु ऐसे समय में भी जनता से तात्पर्य मध्यम वर्ग से ही था,जिसे मार्क्सवादियों के शब्दों में हम उभरता हुआ पूँजीपति वर्ग कह सकते हैं । इसी वर्ग ने 1776 ई0 में अमेरिका में तथा 1789 ई0 में फ्रांन्स में क्रांन्ति की थी ,जिसे हम आधुनिक लोकतंत्र के विकास का पहला महत्वपूर्ण चरण कह सकते हैं । वर्तमान समय में दुनिया के विभिन्न लोकतांत्रिक देश वे हैं जहाँ पर किसी न किसी औपनिवेशिक सत्ता से स्वतंत्र होने के लिए वाकायदा संगठित जन आन्दोलन चले और लोकतंत्रवादी नेतृत्व की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है । एक पढ़े लिखे आम भारतीय के लिए लोकतंत्र का अर्थ है –जनता की इच्छा की सर्वोच्चता, जनता के द्वारा चुनी हुई प्रतिनिधि सरकार, निष्पक्ष एवं आवधिक चुनाव, वयस्क मताधिकार, सरकार के हाथों में राजनीतिक शक्ति का जनता की अमानत के रुप में होना, सरकार के निर्णयों में सलाह दबाव तथा जनमत के द्वारा जनता का हिस्सा, जनता के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की हिफाजत सरकार का कर्तब्य होना, निष्पक्ष न्यायालय, कानून का शासन, उत्तरदायी सरकार तथा विभिन्न राजनीतिक दलों की उपस्थिति और इन सबसे बढ़कर यह सोच कि जनता का शासन एक अवास्तविक और असंभव चीज है। इसलिए शासन तो अन्ततः उन्हीं व्यक्तियों का होगा जो 'काबिल' हैं । भारत समेत दुनिया के सभी लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्थाओं में 'शासन करने वालों की काबिलियत' का व्यावहारिक पक्ष ही वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती है ।

लोकतंत्र के व्यावहारिक पक्ष की इस चुनौती को परेटो, मोस्का, मिचेल, बर्नहम, शुम्पिटर ने अपने विशिष्टवर्गीय सिद्धान्त की व्याख्या में बड़ी सजगता से स्पष्ट करते हुए साफ कह दिया है कि 'जनता का शासन' एक अवास्तविक या असंभव चीज है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में शक्ति एवं प्रभाव रखने वाले लोग अन्ततः शासन पर कब्जा कर ही लेते हैं । ये विशिष्ट जन जनता की इच्छा, जनहित, बहुमत का शासन, उत्तरदायी सरकार, सार्वजनिक प्रभुसत्ता जैसे नारे गढ़कर लगातार इनकी दुहाई भी देते रहते हैं और नीजी हित साधते रहते हैं। ये लोग समयबद्ध आम निर्वाचन भी करवाते हैं परन्तु अन्ततः सत्ता इन्हीं के हांथों में रहती है । सत्ता के लिए ये कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं । यदि निष्पक्ष चुनावों के बाद जनता विभिन्न प्रतिस्पर्धी दलों को खण्डित जनादेश की स्थिति में भी ला दे तब भी उसी जनता के बेहतरी की दुहाई देकर ये अपने सबसे बड़े राजनीतिक प्रतिद्वन्दियों से गठजोड़ करने में जरा भी संकोच और विलम्ब नहीं करते और ऐसे समय में जनता की हालत यह होती है कि वह सक्रिय तमाशबीन भी नहीं रह के लोकतांत्रिक क्रियाओं से उदासीनता के रुप में सामने आता है।

आधुनिक युग का आरम्भ पुनर्जागरण तथा धर्म–सुधार के शक्तिशाली आंदोलनों से हुआ। राजनीतिक तथा सामाजिक चितन का आधार व्यक्ति को बनाया गया और इसके साथ ही नए नैतिक मूल्यों, प्राकृतिक अधिकारों, स्वतंत्रता के विचार तथा अन्य लोकतंत्रीय विचारों का जोर–शोर से समर्थन हुआ। पुनर्जागरण के दौर में इटली में नगर–राज्य व्यवस्था पनपी जिसकी कार्यविधि प्राचीन यूनानी नगर–राज्यों से मिलती–जुलती थी। फ्लोरेंस तथा बेनिस में लोकतंत्रीय व्यवस्थाएँ स्थापित हुई। यूरोप के दूसरे देशों में इस दौर में शक्तिशाली राजाओं के अधीन प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना हुई। एक नए वर्ग–मध्यम वर्ग–का उदय हो रहा था, और सामंती व्यवस्था ढह रही थी जिसका स्थान राष्ट्रीय व्यवस्था ले रही थी। 16वीं और 17वीं शताब्दी इस परिवर्तन का समय था। इटली के नगर–राज्य आपसी झगड़ों और तनावों के कारण एक अच्छा नक्शा पेश नहीं कर पाए और

मेकियाबेली ने अपने राजनीतिक चिंतन में शक्तिशाली केंद्रीकृत प्रभुत्वसंपन्न राज्य के महत्व पर जोर दिया। उभरते हुए पूँजीपति वर्ग (मध्यमवर्ग) की राजनीतिक आवश्यकता राष्ट्रीय राज्य थी। अतः चर्चशाही तथा सामंतशाही के चंगुल में जकड़े यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना के लिए आरम्भ में निरंकुश राजाओं का समर्थन किया गया। किन्तु जब राष्ट्रीय राज्य स्थापित हो गए, तब राजशाही की निरंकुशता पर करारा प्रहार हुआ और जॉन लॉक (1632–1704) से लेकर आज तक का पश्चिमी राजनीतिक चिंतन इस सैद्धांतिक एवं संस्थात्मक विकास का दर्शन है।

आरम्भ में प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया गया जो जॉनलॉक के दर्शन में अभिव्यक्त हुआ। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में बेंथम तथा मिल ने उपयोगिता–अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम सुख– के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया। उन्नीसवीं सदी में जब मुक्त प्रतियोगिता पर आधारित समाज में मजदूर वर्ग का गहरा शोषण एक नासूर के रूप में दिखाई पड़ रहा था तथा नकारात्मक शक्तिहीन राज्य मजदूर वर्ग के उभरते हुए आंदोलन के दबाव में चरमरा रहा था, तब कल्याणकारी, सकारात्मक, लोकतंत्रीय राज्य को ग्रीन के दर्शन में नैतिक आधार पर समर्थन मिला। लोकतंत्र को मानव के चहुँमुखी विकास का साधन मानते हुए ग्रीन ने कल्याणकारी लोकतंत्रीय राज्यों का समर्थन किया। बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र इसी कल्याणकारी लोकतंत्रीय विचारधारा से प्रेरित है।

अठारहवीं शताब्दी में अमरीकी 1776 तथा फ्रांसीसी 1789 की क्रांतियाँ आधुनिक लोकतंत्र के विकास का पहला महत्वपूर्ण चरण थीं। स्वतंत्रता, समानता भाइचारे के नारों द्वारा लोकतंत्र का आदर्श तथा औचित्य लोकतंत्रीय सिद्धांतों का केन्द्र–बिन्दु बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने समाजवादी लोकतंत्र का विचार किया जिनमें मानव द्वारा मानव का शोषण न हो। पूँजीवादी व्यवस्था को क्रांति द्वारा समूल नष्ट कर, मजदूर वर्ग के नेतृत्व में स्थापित इन समाजवादी लोकतंत्रों का आरम्भ रूस की क्रांति द्वारा 1917 में हुआ। समाजवादी लोकतंत्रों का आधार, दर्शन तथा संस्थात्मक ढाँचा उदारवादी लोकतंत्रों से एकदम भिन्न है।

भारतीय लोकतंत्र अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र है। जिसमें जनता शासन में सीधे भाग न लेकर अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से भाग लेती हैं। इसके जनक बेन्थम हैं, जिन्होंने एक व्यक्ति और एक वोट का सिद्धान्त तथा "अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख" का विचार दिया। लोकतन्त्र की प्रकृति का निर्धारण राजनीतिक लोकतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र एवं आर्थिक लोकतंत्र के संगठित एवं सन्तुलित विकास की अवस्थाओं या स्थितियों से निर्धारित होता है। यदि राजनीतिक व्यवस्था , सामाजिक – आर्थिक लोकतन्त्र का विकास करने में सफल राजनीतिक लोकतंत्र के निर्माण में आधारभूत स्तम्भ का कार्य करती है। इस विचार का स्पष्टीकरण पंडित नेहरू जी के वाक्यांश में देखने को मिलता है, जो इस प्रकार है, "भूतकाल में लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र के रूप में ही पहचाना गया। जिसमें मोटे तौर से एक व्यक्ति का एक मत होता है। किन्तु मत का उस व्यक्ति के लिए कोई महत्व नहीं होता जो निर्धन और निर्बल है या ऐसे व्यक्ति के लिए जो भूखा है और भूख से मर रहा है। राजनीतिक लोकतंत्र अपने आप में पर्याप्त नहीं है। उसका आर्थिक लोकतंत्र और समानता में धीरे–धीरे वृद्धि करने के लिए और जीवन की सुख–सुविधाओं को दूसरों तक पहुँचाने के लिए तथा सभी असमानताओं को हटाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अर्थात् राजनीतिक लोकतंत्र एक साधन के रूप में कार्य करती हैं, आर्थिक सामाजिक लोकतंत्र की प्राप्ति

के लिए। इसी बात को डॉ0 राधाकृष्णन जी ने इस प्रकार कहा था – "जो गरीब लोग इधर–उधर भटक रहे हैं, जिनके पास कोई काम नहीं, जिन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती और जो भूख से मर रहें हैं, जो निरंतर कचोटने वाली गरीबी के शिकार हैं, वे संविधान या उसकी विधि का गर्व नहीं कर सकते है।"

वास्तव में देखा जाए कि भारत का संविधान न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक लोकतंत्र का भी मार्ग प्रशस्त करता है। इस विचार को भारतीय संविधान के पिता डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में अपने समापन भाषण में कहा था कि 'यदि राजनीतिक लोकतंत्र का आधार सामाजिक लोकतंत्र का आशय नष्ट हो जायेगा।' यहाँ सामाजिक लोकतंत्र का आशय है, वह जीवन पद्धति जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता को मान्यता देती है। वे इस त्रिमूर्ति का एकीकरण है। इस अर्थ में यदि एक को हम दूसरे से अलग कर दें तो लोकतंत्र का आशय निष्फल हो जायेगा। स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता, समानता को स्वतंत्रता से पृथक नही किया जा सकता। इसी प्रकार स्वतंत्रता और समानता को बन्धुत्व से विलय नहीं किया जा सकता। इससे स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र के प्रत्येक आधार में स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व व्यवस्थाओं के सफल संरचना का अवयव है, इसके बिना कोई भी व्यवस्था अपने लोकतांत्रिक स्परूप को बनाए नहीं रह सकती। लेकिन वर्तमान के भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में बढ़ते विकृत सेक्युलरवाद, अपराधीकारण सत्ता पर बाहुबलियों का अधिकार, परिवारवाद, साधन–साध्य की अपवित्रता और बढ़ते भ्रष्टाचार ने राजनीति के कल्याणकारी स्वरूप के ह्रास ने इस बात को स्पष्ट कर दिया, है कि अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं का नेतृत्व करने वाली राजनीतिक व्यवस्था में ही स्वतन्त्रता आर्थिक–सामाजिक लोकतन्त्र का स्वस्थ्य विकास होना संभव नहीं है। जो हमें भारत में बढ़ते नक्सलवाद ,श्वेत वसन अपराध, आर्थिक विकास के दुष्परिणाम के रूप बढ़ती पर्यावरण की समस्याएँ, राजनीतिक अस्थिरता, योजनाओं–परियोजनाओं के पूर्ण सफलता में कमियाँ, सहकारी एवं कुटीर उद्योगों की दुर्दशा, आर्थिक विषमता को बढ़ती खाई, संस्थाओं में बढ़ती अकुशलता के रूप में प्रस्तुत है। भारतीय संविधान की उद्देशिका में 'लोकतंत्रात्मक गणराज्य' का जो चित्र है, वह राजनैतिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण से है। दूसरे शब्दों में न केवल शासन में लोकतंत्र होगा बल्कि समाज भी लोकतंत्रात्मक होगा। जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता की भावना होगी। राज्य नीति–निर्देशक (भाग चार) के अनुसार आर्थिक न्याय का दृष्टिकोण, राष्ट्रीय धन और संपत्ति स्त्रोतों में अनेक गुना वृद्धि करके इनका सभी लोगों में साम्यापूर्ण विवरण करना है, जो उत्पादन में अपना अभिदाय करते है, तथा साथ ही अकुशल उत्पादकों का कुशल उत्पादक बनने की सुविधा प्रदान करना है। अर्थात् समावेशी विकास एवं सतत् विकास हमारी आर्थिक विकास की धुरी होनी चाहिए।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप संघात्मक, संसदीय लोकतंत्र के फेबियनवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। संविधान के प्रतिनिधिमूलक राज्य व्यवस्था में मौलिक अधिकार (भाग प्प्), राज्य नीति–निर्देशक नियम एवं उद्देशिका भारतीय संविधान के दर्शन एवं उद्देश्य को इंगित करता है। जिसमें न्याय, समानता व विकास की अवधारणा को लोकतांकित्रक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। भारतीय राजनीति के प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र के कारण प्रत्यक्ष लोकतंत्र की तीन व्यवस्थाएँ – जनमत संग्रह, जिसका आशय है कि सरकार किसी भी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय नीति को निर्धारित कने के पूर्व जनता की राय लेती है। द्वितीय उपक्रम ;प्दंजंजपअमद्ध, इसका आशय है, किसी कार्य के करने के लिए जनता द्वारा व्यक्त की गई राय एवं तृतीय–प्रत्याआहान ;त्मबंससद्ध जनता चाहे तो

शासन चलाने वाले व्यक्तियों को वापस बुला सकती है। यह व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र में नहीं है। जिसके परिणामस्वरूप लोकनीति के निर्धारण में तथा अकुशल शासन के बहुमत समर्थन के कारण उन्हें सत्ता से वंचित नहीं किया जा सकता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र की इन तीन व्यवस्थाओं को न स्वीकार करने कारण भारत की विशाल अशिक्षित जनसंख्या तथा अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने को बताया जाता है। भारतीय राजनीतिक लोकतंत्र में भारतीय नागरिकों को मत देने का अधिकार, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार चुनाव लड़ने का अधिकार आदि प्राप्त है। परन्तु यह अधिकार मात्र औपचारिकता ही रह जाती है, जब यह वर्तमान में राजनीतिक प्रशासन भ्रष्टाचार के खिलाफ सिविल सोसाईटी का जनलोकपाल विधेयक के लिए आन्दोलन इस बात को प्रदर्शित करती है कि, राजनीतिक नेतृत्व की बढ़ती संवेदनहीनता ने हमारी व्यवस्थाओं में बढ़ते भ्रष्टाचार के नये राजनीतिक स्वरूप ने हमारी राजनीतिक व्यवस्था की खामियों को विस्तृत रूप में उद्घातित कर दिया है। जिसमें मुख्यतः राजनीतिक नेतृत्व कर्ताओं के आपसी प्रतिद्वन्द्विता, नेतृत्व में नैतिक मूल्यों के ह्रास का कारण बनी हें जिसके फलस्वरूप राजनीतिक संरचना राजनीतिक संरचना की अकुशलता एवं अपर्याप्तता, साक्षा सरकार की कमजोरियां के कारण दल–बदल की राजनीति, आयोग्य–भ्रष्ट व्यक्तियों के पद पर नियुक्तियां, दलों की साठ–गांठ ने जनता के कल्याण व विकास की राजनीति को दलीय राजनीति तक सीमित कर दिया है। इस प्रकार कामचलाऊ अस्थिर नेतृत्व ने राजनीति में व्याप्त समस्या के स्थान पर नई समस्याओं को उत्पन्न कर रहा है, जिसके कारण हमारे बौद्धिक वर्ग ने वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की असमर्थता को स्वकारने लगे हैं। राजनीतिक संरचना के परिर्वतन को (अध्यक्षीय शासन प्रणाली) वर्तमान की आवश्यकता बताया है।

इसी बात को प्रमाणिकता का आधार प्रदान करते हुए प्रो0 जे0डी0 सेठी का कहना है कि "संसद की सत्ता की हानि का मूल कारण है वर्तमान पार्टी पद्धति, पार्टी अनुशासन एवं निष्ठा के कारण सरकारें अधिकाधिक आरक्षित होती गयी है।" डॉ0 सिंधवी के अनुसार "आज संसद केवल सीमित सर्तकता की साधन रही है। नीति के निर्माण और संशोधन में संसद सशक्त मार्ग दर्शन प्रदान करने में अपने को असमर्थ पाती है।" इस प्रकार यहॉ अरस्तू के लोकतंत्र का विकृत रूप भीड़तंत्र के रूप में दलों की भीड़ ने ले लिया है। अपने–अपने वर्ग, जाति, सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले ये दल विकास की राजनीति से दूर–दूर तक नाता नहीं है। इनका जनता के प्रति उत्तरदायित्व नगण्य है। विगत 65 वर्षों में भारतीय राजनीति की समस्याएं कुछ इस प्रकार इंगित हुई है – राजनीतिक अस्थिरता व अनिर्णयता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण हमारी राज व्यवस्था में शक्ति–शून्यता की स्थिति पैदा होने लगी। जिसका प्रभाव नीतियों के निर्माण, क्रियान्वयन एवं विकास सम्बन्धी परियोजनाओं पर पड़ रहा है। वर्ष 1989–99 का दशक भारत के संसदीय इतिहास में घोर राजनीतिक अस्थिरता के दशक के रूप में स्मरण किया जाता है। इन वर्षों में पाँच बार लोकसभा के चुनाव हुए इन चुनावों से चार बार केन्द्र में सरकार बदली और सात नेताओं ने प्रधानमंत्री पद धारण किया। वर्तमान में राजग एवं सप्रंग सरकार के गठबंधन के लोकतांत्रिक स्परूप में छिपी कमियों के रूप में राजनीति में बढ़ता भ्रष्टाचार या राजनीतिक अपराधीकरण की समस्या को सर्वमान्य कर दिया है। क्षेत्रीय दलों के बढ़ते वर्चस्व ` प्रतिनिधि लोकतन्त्र के विकास की जगह कहीं न कहीं क्षत्रियतावाद, साम्प्रदायिकता का विकास अपने 'वोट बैंक' की राजनीति को बचाने के लिए करते आ रहे हैं। सशक्त उत्तरदायी प्रतिपक्ष का अभाव हमारी संसदीय व्यवस्था की विशेषता रही है।

विगत सात दशकों के विकासवादी प्रयोग के आधार पर भारतीय लोकतन्त्र को एक नवीन प्रतिमान की संज्ञा दी जा सकती है, यद्यपि परिणाम अपेक्षानुरूप नहीं रहे हैं, न तो संद्यृत विकास का लक्ष्य मिल पाया है और न ही सामाजिक, आर्थिक न्याय की संकल्पना फली भूत हुई है, फिर भी आत्मनिर्भर, स्वाभिमान युक्त सम्प्रभु राष्ट्र की संकल्पना पर प्रश्न चिह्न नही लगाया जा सकता है, एक नवीन बहुलवादी राजनीतिक संस्कृति का जन्म हुआ है। यद्यपि परम्परागत सामाजिक संरचना की गहरी पैठ और इतिहास को ढोने की प्रवृत्ति ने हमें अपेक्षित गति नही पकडने दी है, पुनः सामाजिक पुनर्जन्म के रूप में हमारे नीति नियन्ता डॉ0 अंम्बेडकर जी को महाम्मा गाँधी जी के मुकाबले खड़ा कर देते हैं और पं0 नेहरू जी से निपटने के लिए सरदार पटेल जी का इस्तेमाल करते है। किन्तु ये समान इतिहास और साझा अतीत के प्रमाण भी हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि लोकतंत्र की नवीन सिद्धान्त रचना के साथ यदि प्राचीन लोकतन्त्रीय व्यवस्था के ग्राह्य तत्वों को निष्पक्षता तथा पूर्ण उदारता से पालन करते हुए ग्रहण किया जाए तो पूरी आशा है कि भारतीय लोकतंत्र अपनी त्रुटियों को स्वयं सँभालता जाएगा तथा सुदृढ़ से सुदृढ़तम हो जाएगा।

सहायक संदर्भ ग्रन्थ

1. संधु ज्ञान सिंह ,राजनीति सिद्धांत, प्रकाशक–हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली, संस्करण–2004
2. मेक्फर्सन सी0बी0, डेमोक्रेटिक थ्योरी, ओ0यू0पी0, 1965
3. लास्की एच0 जे0,ए ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स, 1926
4. अय्यर राघवन ,पैरा पॉलिटिक्स : टुर्वडस द सिटी ऑफ मेन, ओ0यू0पी, 1978
5. राजनीति विज्ञान (टाटा मैग्रा–हिल्स) एन0डी0 अरोड़ा, प्रकाशक–टाटा मैक्ग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड ,नई दिल्ली,2001
6. राय, मेदवेदेव मैकमिलन ,ऑन सोशलिस्ट डेमोक्रेसी,, 1978
7. मैकाइवर आर0एम0, द माडर्न स्टेट, ओ0यू0पी0, 1926
8. विलियम जान ,पावर एण्ड पावर पॉलिटिक्सः ए क्रिटिक,, लंदन, 1983
9. पंत अम्बादत, गुप्ता मदनगोपाल एवं जैन हरीमोहन, राजनीति शास्त्र के आधार, प्रकाशक– सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, 2001
10. अरोड़ा एन0डी0,राजनीति विज्ञान (टाटा मैग्रा–हिल्स) प्रकाशक–टाटा मैक्ग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड ,नई दिल्ली,2001
11. दैनिक भास्कर, समाचार पत्र, प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण 01–15 मई, 2012
12. नारायणन डॉ0 के0 आर0, उद्धृत हस्तक्षेप,राष्ट्रीय सहारा, 19 फरवरी 2000
13. प्रतियोगिता दर्पण,हिन्दी मासिक पत्रिका,संस्करण–मार्च 2011
14. दृष्टिकोण मंथन, संस्करण–1–15,अप्रैल–2011,प्रकाशन–दिल्ली
15. दृष्टिकोण मंथन, संस्करण – 1 – 15 ,मई – 2011, प्रकाशन–दिल्ली
16. दैनिक भास्कर, समाचार–पत्र, प्रकाशन–दिल्ली, अंक–10 सितम्बर, 2011
17. इकोनोमी पॉलिटिकल वीकली ,3 सितम्बर 2011
18. निबंध मंजूषा–समीरात्मज मिश्र, टाटा मैग्रा हिल्स पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2008